सामाजिक कहानियां

दो कहानियां

रवीन्द्र साहित्य

लल्ला-बाबू की वापसी

दीदी

इस पुस्तक की विश्व की
अनेक भाषाओं में करोड़ों प्रतियां
बिक चुकी हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) के बहुमुखी साहित्य को विलक्षण और सफल साधना कहा जा सकता है। वह केवल कुशल कथाकार ही नहीं थे बल्कि उन्होंने साहित्य की बहुत-सी विधाओं का संस्कार किया और उन्हें भारतीय संदर्भ और पहचान देकर विश्व-साहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया।

टैगोर ने लगभग नब्बे कहानियों की रचना की; इनकी अधिकतम कहानियां अपनी औपचारिक समाप्ति के बाद भी हमारे मन में एक अजीब-सा कौतूहल और जिज्ञासा का भाव जगाये रखती हैं और इस बात का बार-बार अहसास कराती हैं कि कहानी भले ही खत्म हो गई उसका वक्तव्य या अनुरोध अब भी उसी तीव्रता के साथ मौजूद है... इतने वर्षों के बाद भी।

1913 में उन्हें उनके काव्य-संग्रह गीतांजलि के लिए साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया जिसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

~

'रवीन्द्रनाथ का साहित्य जीवन का साहित्य और भारत की आत्मा का साहित्य है। श्री धन्यकुमार जैन के अनुवाद को कोई निष्पक्ष आदमी अप्रामाणिक और हलका नहीं कह सकता।'

— 'ज्ञानोदय'

'उन्होंने बंगला में लिखा परन्तु उनके मानस की व्यापकता को भारत के किसी भाग तक परिसीमित नहीं किया जा सकता। वह तत्त्वत: भारतीय थे और इसके साथ ही सम्पूर्ण मानवता को घेरे हुए थे। वह एक साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय थे।'

— जवाहरलाल नेहरू

अनुवादक धन्यकुमार जैन : एक परिचय

'श्री धन्यकुमार जैन जैसे सिद्धहस्त व्यक्ति द्वारा किये-हुए अनुवाद की भाषा के संबन्ध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। मूल बंगला-सा ही रस हिन्दी में उपलब्ध है।'

— 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', नयी दिल्ली

रवीन्द्रनाथ की विभिन्न पुस्तकों का कई महानुभावों ने समय-समय पर अनुवाद किया है लेकिन उनकी (कवि की) स्वप्निल भावनाओं के अनुरूप हिन्दी केवल श्री धन्यकुमार जैन ही प्रस्तुत कर सके हैं। श्री जैन ने रवीन्द्र को हिन्दी का ही बना डाला। 'नया जीवन' की ओर से हम इस साधक के ललाट पर अभिनन्दन का तिलक लगाते हैं।'

— 'नया जीवन', सहारनपुर

'श्री जैन का प्रयास निस्सन्देह बहुत ही सराहनीय है। रवि बाबू के साहित्य का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत कर आपने हिन्दी-जगत् की बड़ी सेवा की है। हिन्दी-जगत् आपकी इस महत्त्वपूर्ण सेवा को कभी भूल नहीं सकता। ऐसा करके आपने हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरा है और उसके गौरव को बढ़ाया है। अनुवाद बड़ा सुन्दर, चुस्त और बोधगम्य हुआ है। इन अनुवादों के लिए हिन्दी-जगत् सदैव आपका ऋणी रहेगा।'

— 'नवशक्ति', पटना

'जहां तक कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ग्रन्थों के अनुवाद का प्रश्न है, श्री धन्यकुमार जैन का नम्बर सबसे ऊपर आता है। उन्होंने तो अपने जीवन का यह लक्ष्य ही बना लिया है कि वह गुरुदेव की रचनाओं को हिन्दी-जनता के सम्मुख लायेंगे। रवीन्द्र-साहित्य के लिए उन्होंने अनुपम कार्य किया है।'

— श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

रवीन्द्र बाबू के उत्कृष्ट विचारों और बेहतर अभिव्यक्ति का एक दूसरी भाषा में अनुवाद करना वास्तव में बहुत कठिन चुनौती है और केवल वही यह उद्यम कर सकते हैं जिन्हें बंगला और विशेष रूप से रवीन्द्र साहित्य का पर्याप्त ज्ञान हो। सौभाग्य से धन्य कुमार जैन एक ऐसे विद्वान् है जो बंगला और हिन्दी दोनों में पूरी तरह सक्षम हैं।

— अमृत बाज़ार पत्रिका

सामाजिक कहानियां

लल्ला-बाबू की वापसी

दीदी

दो कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर

लल्ला-बाबू की वापसी

रायचरण जब पहले-पहल नौकरी पर बहाल हुआ तब उसकी उम्र कुल बारह साल की थी। जसोर जिले में उसका घर था। लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आंखें और काली-चिकिनी छरहरी देह थी उसकी। वह जाति का कायस्थ था और उसके मालिक भी कायस्थ थे। मालिक के घर साल-भर का एक बच्चा था, उसे खिलाना, सम्भालना और घुमाना-फिराना, यही उसकी नौकरी थी।

धीरे-धीरे उस बच्चे ने रायचरण की गोद छोड़कर कॉलेज में और फिर कॉलेज छोड़कर मुन्सफिी में कदम रखा। रायचरण अब भी उनके यहां नौकर था। अब उसका एक मालिक और बढ़ गया है, घर में 'बहूजी' आ गई हैं। इसलिए अनुकूल-बाबू पर रायचरण का पहले जितना अधिकार था उसका अधिकांश नवीन गृहिणी के हाथ लग गया है।

किन्तु मालकिन ने जैसे ही रायचरण का पहले का हक कुछ घटा दिया वैसे ही एक नया हक देकर उसकी बहुत-कुछ पूर्ति भी कर दी। थोड़े ही दिन हुए अनुकूल के एक लड़का पैदा हुआ है और रायचरण ने उसे सिर्फ अपनी कोशिश और मेहनत से ज़रूरत से ज्यादा अपना लिया है।

बच्चे को वह ऐसे उत्साह के साथ झूला झुलाता है, ऐसी चतुराई से उसके दोनों हाथ पकड़कर ऊपर को उछालता है, जवाब की कोई आशा न रखकर उससे ऐसे-ऐसे बेमतलब के सवाल पूछता रहता है, और उसके मुंह के पास अपना सिर ले जाकर ऐसे हिलाया करता है कि वह नन्हा-सा आनुकौलव रायचरण को देखते ही मारे खुशी के फूल कर कुप्पा हो जाता है।

वह नन्हा-सा बच्चा जब पेट और घुटनों के बल चलकर चौखट पार होता और कोई पकड़ने आता तो खिलखिलाकर हंसता हुआ जल्दी से निरापद स्थान में दुबकने की कोशिश करता, तब रायचरण उसकी असाधारण चतुरता और विचार-बुद्धि देखकर आश्चर्य में पड़ जाता। उसकी मां के पास जाकर वह बड़े गर्व और आश्चर्य के साथ कहता, 'बहूजी, तुम्हारा यह लड़का बड़ा होने पर 'जज' होगा — पांच हज्जार रुपये पाया करेगा!'

संसार में और भी कोई मानव-सन्तान इस उमर में चौखट पार करना आदि ऐसी चतुराई का परिचय दे सकती है, यह बात रायचरण के कयास (कल्पना) के बाहर थी। उसका खयाल था कि सिर्फ भावी जजों के लिए ही ऐसी बातें सम्भव हैं औरों के लिए नही।

आखिर बच्चे ने जब डगमगाते हुए चलना शुरू किया तो वह भी बड़े आश्चर्य की बात हो गई। जब वह मां को 'म्मा', बुआ को 'उआ' और रायचरण को 'चन्ना' कहकर पुकारने

लगा, तब तो रायचरण इस आश्चर्यजनक संवाद को बड़े उत्साह से चारों तरफ घोषति करने लगा।

सबसे बड़ी ताज्जुब की बात तो यह है कि मां को 'म्मा' कहता है, बुआ से 'उआ' कहता है, पर उसे कहता है 'चन्ना'! वास्तव में बच्चे के दमिाग में यह बुद्धि आई कहां से, बतलाना कठनि है। अवश्य ही कोई ज्यादा उमर का आदमी ऐसी तीक्ष्ण-बुद्धि का परचिय न दे सकता था और देने पर भी उसके 'जज' होने की सम्भावना में सबको पूरा-पूरा सन्देह रह जाता।

कुछ दनि से रायचरण को मुंह में रस्सी दबाकर घोड़ा बनना पड़ता है। पहलवान बनकर बच्चे के साथ कुश्ती भी लड़नी पड़ती है और उसमें अगर वह हारकर ज़मीन पर गरि नहीं पड़ता तो बेचारे की शामत आ जाती है।

इसी समय अनुकूल बाबू का पद्मा नदी के कनिारे के कसिी जलि में तबादला हो गया। वहां जाते वक्त वह अपने बच्चे के लिए कलकत्ते से एक छोटी-सी ठेला-गाड़ी ले गये थे। रायचरण सुबह-शाम दोनों वक्त नवकुमार को साटन का कुरता, सरि पर ज़रीदार टोपी, हाथ में सोने के कड़े और पैरों में लच्छे पहनाकर उस गाड़ी में बठिाकर हवा खलिाने ले जाता।

~

वर्षा ऋतु आई। भूखी पद्मा नदी, खेत, बाग-बगीचे, गांव सबको एक-एक ग्रास में नगिलने लगी। चर की रेती पर के पेड़-पौधे सब पानी में डूब गये। नदी के कनिारे के कगारे धसकने की डरावनी आवाज़ और पानी के गर्जन से दसों दशिाएं मुखरति हो उठीं। तेज़ी से दौड़ती हुई फेनराशि ने नदी की तीव्र गति को और भी भयानक कर दयिा।

उस दनि तीसरे पहर बादल घरि आये थे पर बरसने की कोई सम्भावना न थी। आज रायचरण का खामखयाली नन्हा-सा मालकि कसिी भी तरह घर में नहीं रहना चाहता। वह गाड़ी पर सवार होकर हवाखोरी को जाने के लिए अड़ गया। रायचरण धीरे-धीरे गाड़ी को ठेलता हुआ खेतों के पास नदी के कनिारे जा पहुंचा। नदी में एक भी नाव न थी और खेत में भी कोई आदमी न था। बादलों की सेंधों में से दखिाई दयिा कि उस पार सुनसान बालुकामय नदी-कनिारे नीरव समारोह के साथ सूर्यास्त की तैयारियां हो रही हैं। उस निस्तिब्धता में बालक सहसा एक पेड़ की तरफ उंगली उठाकर बोल उठा, 'चन्ना, फू:!'

पास ही दलदल ज़मीन पर एक कदम का पेड़ था जसिकी ऊंची शाखा पर कुछ फूल खलि हुए थे। उन्हीं पर बालक की लुब्ध दृष्टि आकृष्ट हुई थी। तीन-चार दनि हुए, रायचरण ने सीकों में गूंथ-गूंथकर उसे कदम के फूलों की गाड़ी बना दी थी, उसमें रस्सी बांधकर खींचने में बच्चे को ऐसा आनन्द आया कि उस रोज़ रायचरण को मुंह में लगाम नहीं

लगानी पड़ी; घोड़े से वह एकाएक सईस के पद पर चढ़ा दयिा गया।

दलदल में से जाकर फूल लाने की रायचरण की इच्छा न हुई। उसने चट से दूसरी ओर उंगली दखिाकर कहा, 'देखो देखो, वो देखो, चरिैया! देखो तो, उड़ गई, आहा! अइयो री चरिैया, लल्ला-बाबू को लड्डू दे जइयो!' इस प्रकार लगातार वचित्रि बातें कर-करके बच्चे को बहलाता हुआ वह ज़ोर से गाड़ी चलाने लगा।

पर जो लड़का बड़ा होकर 'जज' होगा उसे इस तरह फुसलाने की कोशशि करना व्यर्थ है खासकर उस समय जब कि चारों तरफ दृष्टि आकर्षति करनेवाली और-कोई चीज़ ही न हो। लहिाज़ा रायचरण का काल्पनकि चरिैया का बहाना ज्यादा देर न टकि सका। तब फरि रायचरण ने कहा, 'तो तुम गाड़ी में बैठे रहना, अच्छा! मैं चट से फूल लयि आता हूं। खबरदार, पानी के कनिारे न जाना!' यह कहता हुआ वह धोती ऊपर चढ़ाकर कदम के पेड़ की ओर चल दयिा।

कनि्तु वह जो पानी के कनिारे जाने को मना कर गया था उससे बच्चे का मन कदम के फूल से हटकर उसी क्षण पानी की तरफ दौड़ गया। उसने देखा कि पानी 'कलकल-छलछल' करता हुआ दौड़ा जा रहा है जैसे कि शरारत करते कसिी एक रायचरण के हाथ से नकिलकर एक शशिु हंसता और कलकल गीत गाता हुआ मना कयि हुए स्थान की ओर तेज़ी से भागा जा रहा हो।

उसके इस बुरे दृष्टान्त से मानव-शशिु का चति्त चंचल हो उठा। वह गाड़ी से उतरकर धीरे-धीरे पानी के पास पहुंचा और एक लम्बे तनिके को उठाकर उसे मछली पकड़ने की बंसी बनाकर पानी में झुककर उससे मछली पकड़ने लगा। और नदी का चचंल पानी अस्फुट कलकल भाषा में बार-बार उसे अपने खेल में शामलि होने के लिए बुलाने लगा।

सहसा पानी में कसिी चीज़ के गरिने की आवाज़ हुई। पर बरसात में पद्मा के कनिारे ऐसे कतिने ही शब्द हुआ करते हैं। रायचरण ने झोली भरकर कदम-फूल तोड़े और पेड़ से उतरकर मुसकराता हुआ वह गाड़ी के पास पहुंचा। वहां जाकर देखता है तो बच्चा नदारद! चारों तरफ अच्छी तरह नगिाह दौड़ाकर देखा पर कहीं भी कसिी का कोई चहि्न तक न दखिाई दयिा। क्षण-भर में रायचरण का खून बर्फ हो गया। सारी दुनयिा उसे सूनी, उदास और धुआंधार दखिने लगी। वह अपने टूटे हुए हृदय से चीख उठा, 'लल्ला-बाबू, लल्ला-बाबू!'

कनि्तु 'चन्ना' कहकर कसिी ने जवाब नहीं दयिा, शरारत करके कसिी बच्चे का कण्ठ खलिखलिा नहीं उठा। सरि्फ पद्मा ही पहले की तरह कलकल छलछल करके दौड़ती रही। मानो वह कुछ जानती ही नहीं! मानो उसे दुनयिा की इन सब छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं!

जब शाम हुई तो बच्चे की उत्कण्ठति मां ने चारों तरफ आदमी दौड़ाये। लालटेन हाथ में लयि लोग नदी के कनिारे पहुंचे। वहां देखा तो, रायचरण आंधी की हवा की तरह खेतों के चारों तरफ 'लल्ला-बाबू, लल्ला-बाबू' चल्लिाता हुआ भटक रहा है, उसका गला बैठ गया है।

अन्त में घर लौट कर रायचरण धड़ाम-से अपनी बहूजी के पैरों पर गरि पड़ा।

उससे बार-बार पूछा गया और वह रो-रोकर यही कहता रहा, 'कहां गया, कुछ भी पता नहीं लगा, मां!'

यद्यपि सब समझ गये कि यह काम पद्मा का ही है फरि भी गांव के बाहर जो बनजारे ठहरे हुए थे उन पर सन्देह रह ही गया। मां के मन में तो यह सन्देह पैदा हुआ कि कहीं रायचरण ने ही न चुरा लयिा हो! यहां तक कि वह उसे बुलाकर कहने लगी, 'तू मेरे लल्ला को लौटा दे, तुझे जतिने रुपये चाहएिं, मैं दूंगी।'

सुनकर रायचरण ने सर्िफ माथे पर हाथ दे मारा।

अन्त में मालकिनि ने उसे नकिाल बाहर कर दयिा।

अनुकूल-बाबू ने अपनी स्त्री के मन से रायचरण के प्रति इस अन्यायपूर्ण सन्देह को दूर करने की कोशशि की थी। उन्होंने स्त्री से पूछा था, 'रायचरण ऐसा जघन्य काम आखरि कसिलिए करेगा?'

गृहणिी ने कहा, 'क्यों! सोने के गहने नहीं पहने था वो!'

2

रायचरण देश चला गया। अब तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था और होने की कोई उम्मीद भी नहीं थी। पर होनी की बात कि उसी साल, इतनी ज्यादा उम्र में, उसकी स्त्री के एक बच्चा हुआ; और उसी में स्त्री की मृत्यु भी हो गई। अपने उस बच्चे पर रायचरण को बड़ा गुस्सा आया। उसे वह बैरी-सा दखिने लगा। उसने सोचा कि यह छल करके लल्ला की जगह अपना हक जमाने आया है! सोचने लगा, मालकि के इकलौते बेटे को पानी में बहाकर खुद पुत्र-सुख का उपभोग करना उसके लिए महा पातक के सविा और कुछ नहीं। यहां तक कि रायचरण की वधिवा बहन अगर न होती तो शायद वह बच्चा दुनयिा की हवा में ज्यादा दनि तक सांस भी न ले सकता था।

ताज्जुब की बात है कि उस लड़के ने भी कुछ दनि बाद लल्ला की तरह ही चौखट पार करना शुरू कर दयिा और सब तरह की मनाहयिों को न मानने में ठीक वैसी ही चतुरता दखिाने

लगा! और तो क्या, उसके गले का स्वर, हंसने और रोने की आवाज़ बहुत-कुछ उससे मलिती-जुलती है। कसिी-कसिी दनि रायचरण उसका रोना सुनता तो उसकी छाती सहसा धड़क उठती, उसे ऐसा लगता कि मानो उसका वह लल्ला ही कहीं भटक-भटककर रो रहा है।

फुलना भी, रायचरण की बहन ने अपने भतीजे का नाम रखा था फुलना, बुआ को 'उआ' कहकर पुकारने लगा। इस परचिति सम्बोधन को सुनकर एक दनि सहसा रायचरण को खयाल आया कि ज़रूर लल्ला ही मेरे मोह को न छोड़ सकने की वजह से मेरे घर आकर पैदा हुआ है।

इस वशि्वास के अनुकूल कुछ अकाट्य युक्तियां भी थीं। पहली उसके चले जाने के बाद इतनी जल्दी उसका जन्म होना। दूसरी, इतने वर्ष बाद सहसा उसकी स्त्री के गर्भ से लड़का पैदा होना, यह उसकी स्त्री के गुण से हरगज़ि नहीं हो सकता। तीसरी, यह भी उसी तरह घुटनों के बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता-फरिता है और बुआ को 'उआ' कहता है। जनि लक्षणों के होने से भवषि्य में जज होने की सम्भावना है उनमें से अधकिांश गुण इसमें मौजूद हैं।

तब 'बहूजी' के उस हृदय-वदिारक सन्देह की बात उसे सहसा याद आ गई और बड़े आश्चर्य में आकर वह मन-ही-मन कहने लगा, 'हां हां, मां के मन ने ठीक जान लयिा था कि कसिी ने उसके बच्चे को चुरा लयिा है। ठीक तो है, तभी तो वह मेरे घर आकर पैदा हुआ है।' फरि, इतने दनि जो उसने बच्चे के प्रति लापरवाही रखी उसके लिए उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। बच्चे को अब वह बहुत ज्यादा चाहने और प्यार करने लगा।

अब से फुलना को वह इस तरह पालने लगा जैसे वह कसिी बड़े घराने का बच्चा हो। उसके लिए वह साटन का कोट खरीद लाया, ज़रीदार टोपी भी ले आया, और अपनी स्त्री के गहने गलवाकर उससे उसके लिए कड़े और लच्छे भी बनवा दयि। मुहल्ले के कसिी भी लड़के के साथ वह उसे खेलने नहीं देता। रात-दनि खुद ही उसका साथी बनकर उससे खेलता रहता है। मुहल्ले के लड़के मौका पाते ही फुलना को 'नवाब का नाती' कहकर चढ़ािया करते हैं। गांव के लोग भी रायचरण के ऐसे उन्मत्तवत् आचरण पर आश्चर्य प्रकट करने लगे हैं।

फुलना जब पढ़ने-लायक हुआ तब रायचरण अपनी ज़मीन वगैरह सब बेच-खोचकर उसे कलकत्ता ले गया। वहां बड़ी मुश्कलि से एक नौकरी तलाश करके फुलना को उसने स्कूल में भरती करा दयिा। खुद जैसे-तैसे गुज़र कर लेता कनि्तु लड़के को अच्छा खाना, बढ़यिा पोशाक और अच्छी शकि्षा देने में कोई कसर न रखता। मन-ही-मन कहता, 'लल्ला-बाबू, तुम मेरे मोह से मेरे घर आये हो, इसलिए तुम्हारा मैं नरिादर नहीं कर सकता।'

इसी तरह बारह साल बीत गये। लड़का पढ़ने-लखिने में तेज़ और देखने में भी अच्छा हृष्ट-पुष्ट सांवले रंग का है, केश-वेश की सजावट की तरफ पूरा ध्यान रखता है, मजिाज़ में कुछ आरामतलबी और शौकीनी हैं बाप को ठीक बाप जैसा नहीं समझता। कारण, रायचरण स्नेह करने में बाप और सेवा करने में नौकर जैसा बर्ताव करता है। इसके सवाि उसमें एक त्रुटि यह भी थी कि वह फुलना का बाप है, यह बात उसने सबसे छपिा रखी थी। जसि छात्रावास में फुलना रहता है, वहां के और सब लड़के गंवार रायचरण की हंसी उड़ाया करते हैं, और कभी-कभी पति की गैर हाज़रिी में फुलना भी उसमें शामलि हो जाया करता है। फरि भी, वत्सल-स्वभाव भोले-भाले रायचरण को सभी लड़के बहुत प्यार करते हैं। फुलना भी प्यार करता है परन्तु उसमें पितृ-स्नेह की जगह अनुग्रह ही ज्यादा रहता है।

रायचरण अब बूढ़ा हो चला। उसका मालकि अब हर वक्त उसके काम-काज में दोष पकड़ता रहता है। वास्तव में उसका शरीर भी शथिलि हो चला है, काम में वह उतना ध्यान नहीं रख सकता, बार-बार भूल जाता है। पर जो पूरी तनख्वाह देता है वह बुढ़ापे का उज्र नहीं सुन सकता। इधर वह जो खेत-जोत बेचकर रुपये लाया था वह भी सब खत्म हो चले। और फुलना भी आजकल अपने को कपड़े-लत्तों से कुछ तंग महसूस करने लगा है।

3

सहसा एक दनि रायचरण ने काम से छुट्टी ले ली और फुलना को कुछ रुपये देकर बोला, ‘लल्ला-बाबू, जरूरी काम है मुझे, कुछ दनि के लिए मैं देश जा रहा हूं।’ बस, इतना कहकर वह बारासात चल दयिा। अनुकूल-बाबू उस समय बारासात में मुन्सफि थे।

अनुकूल-बाबू के और कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। उनकी स्त्री अब भी उस बच्चे के शोक में आंसू बहाया करती हैं।

एक दनि शाम के वक्त अनुकूल-बाबू कचहरी से लौटकर आराम कर रहे थे और उनकी स्त्री कसिी साधू-महात्मा से सन्तान की कामना से काफी कीमत देकर कोई जड़ी और आशीर्वाद खरीद रही थीं।

इतने में आंगन से आवाज़ आई, ‘जय हो बहूजी की!’

बाबू-साहब बोले, ‘कौन है?’

रायचरण ने आकर नमस्कार कयिा, बोला, ‘मैं हूं, रायचरण।’

बूढ़े को देखकर अनुकूल का हृदय पसीज गया। उसकी मौजूदा हालत के बारे में उन्होंने सैकड़ों सवाल पूछ डाले। और फरि उन्होंने रायचरण को फरि से काम पर बहाल करने की

इच्छा प्रकट की।

रायचरण ने सूखी हंसी हंसकर कहा, 'मैं तो सरि्फ बहूजी की आसीस लेने आया हूं।'

अनुकूल-बाबू उसे अपने साथ भीतर ले गये। परन्तु उसकी 'बहूजी' ने प्रसन्नता से उसका आदर नहीं कयिा।

कनि्तु रायचरण ने कुछ ध्यान न देते हुए हाथ जोड़कर कहा, 'बहूजी, मैंने ही तुम्हारा लड़का चुराया था। पद्मा ने नहीं, और कसिी ने भी नहीं, उसका चुराने वाला मैं ही हूं, करितघ्नी हूं मैं, पापी हूं'

अनुकूल-बाबू कह उठे, 'क्या कह रहा है तू! कहां है वह?'

'जी, मेरे ही पास है। मैं परसों यहां पहुंचा दूंगा।'

इतना कहकर रायचरण चला गया।

उस दनि रववािर था। कचहरी की छट्टी थी। सवेरे से स्त्री-पुरुष दोनों जने बड़ी उत्सुकता से रायचरण के आने की राह देख रहे थे।

करीब दस बजे फुलना को साथ लेकर रायचरण हाज़रि हुआ।

अनुकूल-बाबू की स्त्री ने लड़के से कुछ पूछताछ नहीं की, और न कुछ सोचा-वचिारा ही, वे चट से उसे गोद में बठिाकर, छाती से चपिटाकर, मुंह चूमकर अतृप्ति नयनों से उसका मुखड़ा देखकर कभी रोती और कभी हंसती हुई व्याकुल हो उठीं। दरअसल लड़का देखने में बहुत अच्छा था। उसके पहनावे में, रहन-सहन में गरीबी का कोई लक्षण ही नहीं था। मुंह पर अत्यन्त प्रयिदर्शन वनिीत सलज्ज भाव देखकर अनुकूल के हृदय में भी सहसा स्नेह उमड़ आया। फरि भी उन्होंने दृढ़ता के साथ पूछा, 'कोई सबूत है?'

रायचरण ने कहा, 'ऐसे काम का सबूत क्या होगा, बाबू-साहब? मैंने जो आपका लड़का चुराया था, इस बात को सरि्फ मैं ही जानता हूं या भगवान जानते हैं, संसार में तीसरा कोई नहीं जानता।'

अनुकूल ने सोच-समझकर नशि्चिय कयिा क िलड़के को पाते ही उनकी स्त्री ने जसि आग्रह के साथ उसे अपना लयिा है, उसे देखते हुए अब सबूत चाहना कुछ मानी नहीं रखता। जैसे भी बने वशि्वास करना ही अच्छा है। इसके सवाि और भी एक बात है, रायचरण को ऐसा लड़का मलि भी कहां से सकता है? दूसरे, इतना पुराना बूढ़ा नौकर बनिा-वजह उन्हें धोखा देगा ही क्यों?

लड़के से भी बातचीत करने पर यही मालूम हुआ कि बचपन से ही वह रायचरण के साथ है और अब तक उसी को वह पिता समझता आया है; किन्तु रायचरण ने कभी भी उसके साथ पिता के समान व्यवहार नहीं किया, बल्कि वह नौकर जैसा बर्ताव करता रहा है। अन्त में, अनुकूल ने मन से सन्देह दूर करके कहा, 'लेकिन, रायचरण, अब तू हम लोगों की परछाईं भी न छू सकेगा।'

रायचरण ने हाथ जोड़कर गदगद कण्ठ से कहा, 'मालिक-साहब, अब इस बुढ़ापे में मैं कहां जाऊंगा?'

मालकिन ने कहा, 'नहीं नहीं, रहने दो। लल्ला मेरा खुश बना रहे। इसे मैं माफ करती हूं।'

किन्तु न्यायपरायण जज अनुकूल चन्द ने कहा, 'इसने ऐसा भयंकर कसूर किया है कि इसे माफ नहीं किया जा सकता।'

रायचरण ने अनुकूल-बाबू के पैर पकड़कर कहा, 'मैंने कुछ नहीं किया, बाबू-साहब, भगवान ने किया है।'

अपना पाप ईश्वर के सिर मढ़ने की कोशिश करते देख जज-साहब और भी ज्यादा नाराज़ हो उठे। बोले, 'जिसने ऐसा विश्वासघात का काम किया है उस पर अब फिर विश्वास करना ठीक नहीं।'

रायचरण ने मालिक के पैर छोड़कर कहा, 'ऐसा मैं नहीं हूं, मालिक!'

'तो कौन है?'

'मेरा भाग्य।'

किन्तु इस तरह की कैफियत से किसी उच्च-शिक्षित और खासकर न्यायकर्ता दण्डदाता 'जज' को भला कैसे सन्तोष हो सकता है!

रायचरण ने कहा, 'संसार में मेरा और कोई भी नहीं है मालिक!'

फुलना ने जब देखा कि वह मुन्सिफ का लड़का है, रायचरण ने अब तक उसे चुरा रखा था और अपना लड़का बताकर वह उसका अपमान करता रहा है, तब उसे भी मन-ही-मन कुछ गुस्सा आया। किन्तु फिर भी उसने उदारता के साथ पिता से कहा, 'पिताजी, इसे माफ कर दो। घर में अगर नहीं रखना चाहते, तो इसके लिए कुछ माहवारी बांध दो।'

इसके बाद रायचरण ने मुंह से कुछ भी न कहकर एक बार अपने इकलौते बेटे का

अच्छी तरह मुंह देखा, सबको प्रणाम किया, और फिर दरवाज़े से बाहर निकलकर संसार के असंख्य आदमियों में जाकर मिल गया।

महीने के अन्त में अनुकूल-बाबू ने जब उसके देश के पते से कुछ रुपये भेजे तो मनीआर्डर वापस आ गया। वहां कोई था ही नहीं।

बंगला-रचना: अगहन 1248
(नवम्बर 1891)

दीदी

1

गांव की एक स्त्री के अन्यायी पति के सभी बुरे कार्यों के बारे में बताकर पड़ोसनि तारा ने गुस्से में कहा, 'ऐसे पति के मुंह में आग!'

यह शब्द सुनकर जयगोपाल बाबू की पत्नी शशी बड़ी दुखी हुई — पति जाति के मुख में सिगार की आग छोड़ अन्य किसी दूसरी तरह की आग की कामना करना स्त्री जाति को शोभा नहीं देता।

शशी के कुछ संकोच प्रकट करने पर गुस्से से तारा बोली, 'ऐसे पति की सुहागिन होने की अपेक्षा सात जन्मों तक विधवा होना कहीं अच्छा है', और यह कहते हुए तारा चली गयी।

शशी ने मन-ही-मन सोचा कि पति के ऐसे किसी अपराध की वह कल्पना नहीं कर सकती जिसके कारण मन का भाव इतना कठोर हो सके। इस बात की मन-ही-मन आलोचना करते-करते उसके कोमल हृदय का सम्पूर्ण प्रेम-भाव परदेस में रहने वाले पति की ओर उच्छ्वसित हो उठा। जिस तरफ़ शय्या पर उसके पति सोते थे उस हिस्से पर बांह फैलाकर उसने सूने तकिए को चूम लिया; उसमें पति की सुगन्ध का अनुभव किया और फिर द्वार बन्द कर लकड़ी के बक्से से पति की बहुत दिनों से आंखों से ओझल तस्वीर और हाथ की लिखी चिट्ठियां निकालकर बैठ गयी। उस दिन की निस्तब्ध दोपहरी शशी ने कक्ष में एकान्त पुरानी यादों के साथ बितायी।

शशीकला और जयगोपाल नवदम्पत्ति हों, ऐसा नहीं। बाल्यकाल में विवाह हुआ था, एक सन्तान भी है। दोनों बहुत दिनों नितान्त सहज भाव से एक साथ ही रहे थे, किसी भी ओर अपरिमित प्रेम का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। क़रीब सोलह वर्ष एक ही भाव से एक साथ बिताकर अकस्मात् कार्यवश पति के विदेश चले जाने पर शशी के मन में विरह का भाव जाग उठा। विरह द्वारा बन्धन में जितना ही खिचाव पड़ा कोमल हृदय को प्रेम के फन्दे ने उतना ही सख़्त हो जकड़ लिया; शिथिल अवस्था में जिसके अस्तित्व को वह महसूस न कर पायी अब उसकी वेदना उसे कसकने लगी।

इसीलिए आज इतने दिनों के बाद, इतनी उम्र में, सन्तान की मां होकर भी शशी वसन्त के अकेले निर्जन कमरे में विरही शय्या पर सुख-स्वप्न देखने लगी। जो प्रेम अनजाने ही जीवन के सामने से प्रवाहित हो गया था सहसा आज उसी के कलगीत शब्द से जाग्रत हो गया। सोचने लगी, 'अब जब पति को निकट पाएगी तब जीवन को नीरस और वसन्त को

नषि्फल नही होने देगी।' कतिने दनि कतिनी ही बार बेकार की बहसों में, छोटे-छोटे ववादों में उसने पत के प्रत अत्याचार भी कयि थे। आज अनुतप्त चति हो एकान्त मन से संकल्प कयि क फरि कभी भी वह न तो असहषि्णुता प्रकट करेगी और न ही पत की इच्छा में बाधा खड़ी करेगी। पत के आदेश का पालन करेगी और प्रीतपूर्ण नम्र हृदय से पत के भले-बुरे सभी आचरण सहेगी क्योंक पत ही सर्वस्व हैं, प्रयि हैं, देवता हैं।

शशीकला लम्बे समय तक अपने माता-पिता की एकमात्र लाड़ली कन्या रही थी। जयगोपाल हालांक मामूली नौकरी करता था फरि भी भवषि्य की उसे कोई भी चन्िता नहीं थी। गांव में सुख से रहने के लिए उसे उसके ससुर की यथेष्ट सम्पत्त मलिी हुई थी।

इसी समय वृद्धावस्था में शशीकला के पिता कालीप्रसन्न के एक पुत्र सन्तान जन्मी। सच कहें तो माता-पिता के इस अनपेक्षति असंगत आचरण के लिए शशी मन-ही-मन अत्यन्त क्षुब्ध हुई और जयगोपाल को तो यह बात सचमुच अच्छी नहीं लगी थी।

अधक आयु में हुए लड़के के प्रत माता-पिता का प्यार प्रबल हो उठा। इस नवागत, लघुकाय, नद्रितुर साले ने अनजाने ही जयगोपाल की सारी आशाओं और भरोसों का जब अपहरण कर लयि तब उसने आसाम के एक चाय-बाग़ान में नौकरी कर ली।

सभी ने उसे पास ही कसिी स्थान में नौकरी की तलाश के लिए कहा पर हर कसिी पर गुस्से के कारण या फरि चाय के बगीचे में नौकरी करने से जल्दी आगे बढ़ने की जानकारी के कारण, जयगोपाल ने कसिी की बात पर कान नहीं दयि; शशी को बच्चे के साथ उसके मायके में छोड़ वह आसाम चला गया। ववाहति जीवन में पत-पित्नी का यही प्रथम वच्छेद था।

इस कारण शशीकला को नन्हे से भाई पर भी बड़ा क्रोध आया। मन की जसि शकियत को मुंह खोलकर कहने का उपाय नहीं होता उसी के कारण क्रोध आता है। यह नन्हा-सा प्राणी आराम से मां का दूध पीता और आंखें मूंदकर सोया रहता और उसकी बहन — दूध गरम, भात ठण्डा, लड़के के स्कूल जाने में देरी आद कई बहानों को ले दनि-रात मान-अभमिन करके स्वयं परेशान होती और सबको तंग करती।

थोड़े दनिों बाद बच्चे की मां की मृत्यु हो गयी और मरने से पहले मां अपने बच्चे को अपनी कन्या के हाथों में सौंप गई।

जल्दी ही उस मातृहीन बच्चे ने अपनी दीदी के हृदय पर अधकिर जमा लयि। हुं-हुंकार शब्द करके उसके ऊपर कूदकर बड़े प्यार के साथ अपना नन्हा पोपला-सा मुंह खोलकर उसके मुंह आँख और नाक को नगिलने की चेष्टा करता, छोटी-सी मुट्ठी में उसके बालों की

लटों को थामकर कसिी भी तरह नहीं छोड़ता, सूर्योदय के ही पहले जग जाता और लुढ़कता-फुदकता उसके पास आकर नर्म स्पर्श से उसे पुलकित कर ज़ोर-ज़ोर से चह्किना आरम्भ कर देता और धीरे-धीरे जब वह उसे दीदी और दीदी-मां कहकर बुलाने लगा — कामकाज के मौक़े पर और दूसरे समय भी नषिदि्ध काम कर, नषिदि्ध खाद्य खाकर उसके आस-पास शोर मचाना शुरू कर दयिा तब शशी और रह न सकी। उसने इस छोटे से स्वेच्छाचारी बालक के प्रतत पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दयिा। लड़के की मां नहीं थी इसलएि उसके प्रतत उसका कर्त्तव्य कहीं अधकि था।

2

लड़के का नाम नीलमणि रखा गया। जब उसकी उम्र दो वर्ष हुई तब उसके पति को एक बड़ी बीमारी ने आ दबोचा। जयगोपाल के पास तत्काल चले आने के लएि पत्र भेजा गया। बहुत कोशशिों के बाद जयगोपाल जब छुट्टी लेकर आ पहुंचा तब कालीप्रसन्न का मृत्युकाल नकिट था।

मृत्यु से पहले कालीप्रसन्न ने अपनी सम्पत्तत का चौथाई हसि्सा पुत्री के नाम लखि दयिा और बाकी सम्पत्तत की देखभाल का भार जयगोपाल को सौंप दयिा।

अत: ज़मीन-जायदाद की ज़म्मिेदारी संभालने के लएि जयगोपाल को नौकरी छोड़नी पड़ी।

काफ़ी दनिों के बाद पतत-पित्नी का पुनर्मलिन हुआ। कसिी जड़ पदार्थ के टूटने पर उसके जोड़ में जोड़ मलिा दयिा जा सकता है पर दो मानव-मनों को जहां वचि्छनि्न कयिा जाता है वहां दीर्घ वचि्छेद के बाद भी रेखा के साथ रेखा मलि ही नहीं पाती क्योंकत मन एक सजीव पदार्थ है, पलपल उसका स्वभाव बदलता रहता है।

शशी के लएि इस नये मलिन में नये भाव का संचार हुआ। जैसे एक बार फरि पतत के साथ उसने ववािह कयिा हो। पुराने दाम्पत्य में एक लम्बे समय के कारण जो जड़ता पैदा हो गयी थी, वरिह के आकर्षण में अपसृत उसने मन-ही-मन प्रतज्ञिा की, 'जैसे भी दनि आएं, जतिने भी दनि जाएं, पतत के प्रतत इस दीप्त प्रेम की उज्ज्वलता को कभी भी म्लान नहीं होने दूंगी।'

इस पुनर्मलिन में जयगोपाल के मन की अवस्था भनि्न थी। पहले जब दोनों इकट्ठे थे तब पत्नी के साथ उनके सारे स्वार्थ और वचितिर् अभ्यासों का ऐक्यबन्धन था, पत्नी तब जीवन का सत्य हो उठती थी — उससे दूर जाने पर दैनकि अभ्यास जाल में सहसा बहुत-सा भाग खाली रह जाता। इसलएि बाहर जाकर पहले-पहल तो जयगोपाल अगाध जल में गरिा। लेकनि धीरे-धीरे उसके उस अभ्यास-वचि्छेद में नये अभ्यास की पैबन्द लग गई।

और इतना ही नहीं। पहले नशि्चनि्त भाव से उसके दनि कटते थे। बीच के दो वर्षों में अपनी स्थिति में उन्नति की चेष्टा उसके मन में ऐसे प्रबल रूप से जग उठी थी कि उसके सामने और कुछ भी नहीं था। इस नये नशे की तीव्रता की तुलना में उसका पूर्व जीवन वस्तुहीन छाया के समान दखिा। स्त्रियों की प्रकृति में मुख्य परविर्तन लाता है प्रेम और पुरुषों में दुश्चेष्टा।

दो वर्ष बाद जब जयगोपाल लौटा तो उसने अपनी पत्नी को ठीक पहले जैसा नहीं पाया। उसकी पत्नी के जीवन में इस शशिु साले ने आकर एक नया परसिर ही रच डाला था। यह हसि्सा उसके लिए पूरी तरह अपरचिति था और इसमें पत्नी के साथ उसका कोई योग नहीं था। उसकी पत्नी उसे इस शशिु-स्नेह में स्थान देने की बहुत चेष्टा करती पर वह इसमें पूरी तरह सफल हुई या नहीं, कह नहीं सकते।

शशी नीलमणि को गोद में लिए मुस्कराती हुई पति के आगे बढ़ा देती — नीलमणि बड़े ज़ोर से शशी के गले से लपिट उसके कंधे में मुंह छपिा लेता — पर जयगोपाल कसिी प्रकार की आत्मीयता प्रकट नहीं करता। शशी की इच्छा होती कि नीलमणि में जतिनी तरह की लुभावनी कलाएं हैं सब जयगोपाल के सामने प्रकट करे कनि्तु जयगोपाल इसके लिए वशिेष उत्सुकता नहीं दखिाता और शशिु भी कोई वशिेष चंचल नहीं था। जयगोपाल कसिी भी तरह समझ नहीं पाता था कि इस दुबले-पतले और भारी से सरि वाले तथा गम्भीर से चेहरे वाले सांवले से लड़के में ऐसा क्या है जसिके लिए उसके प्रति इतने स्नेह का अपव्यय कयिा जा रहा है।

स्नेह के रंग-ढंग को स्त्रियां बड़ी जल्दी भांप लेती हैं। शशी ने अवलिम्ब समझ लयिा कि जयगोपाल नीलमणि के प्रति वशिेष प्रेम नहीं रखते। उसने भाई को बड़ी सावधानी से आड़ में कर लयिा — पति की स्नेहहीन और उदासीन दृष्टि से उसे दूर रखने की चेष्टा करती। इस प्रकार बालक उसका गोपनीय धन, उसके अकेलेपन की स्नेह-सामग्री बन बैठा। सभी जानते हैं कि स्नेह जतिना गोपनीय, जतिना एकान्त, में कयिा जाता है उतना ही प्रबल होता है।

चूंकि नीलमणि के रोने पर जयगोपाल बुरी तरह खीज उठता इसलिए शशी उसे जल्दी से सीने में छुपा जी-जान से चुप कराने की चेष्टा करती — वशिेष रूप से तब जब नीलमणि के रोने से रात में जयगोपाल की नींद में बाधा पड़ती। पति इस रोते हुए बालक के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु रूप से घृणा प्रकट करता हुआ जब ज़ोर से गरज उठता तब शशी अपराधनिी-सी संकुचति और त्रस्त हो उठती। उसी क्षण उसे गोद में दूर ले जाती और एकान्त में स्नेह स्वर में 'मेरा सोना, मेरा धन, मेरा रतन' कहकर सुलाती।

बच्चों के बीच अनेक बहाने लेकर झगड़े-ववािद होते ही रहते हैं। पहले ऐसे अवसरों पर शशी अपनी सन्तान को दण्डति कर भाई का पक्ष लेती; क्योंक िउस बेचारे की मां नहीं थी परन्तु अब न्यायकर्ता के साथ-ही-साथ दण्ड में भी परविर्तन हुआ। हमेशा ही नरिपराध और अवचिार के कारण नीलमण िको कठनि दण्ड दयिा जाता। यह अन्याय शशी के हृदय को नटसाल की तरह बधि जाता; इसलएि वह अपने दण्डति भाई को कमरे में ले जाकर मठिाई और खलिौने देकर उसके आहत हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा करती।

परणिाम यह हुआ क िशशी नीलमण िसे जतिना ही प्रेम करती जयगोपाल नीलमण िके प्रत िउतना ही गुस्सा करता और जयगोपाल नीलमण िके प्रत िजतिना ही वरिाग प्रकट करता शशी उतना ही उसे स्नेहसुधा से अभषिकि्त करती रहती।

वैसे जयगोपाल ने कभी भी अपनी पत्नी के प्रत िकसिी प्रकार का कठोर व्यवहार नहीं कयिा था और शशी भी चुपचाप नम्रता और प्रेम के साथ पत िकी सेवा करती रहती लेकनि इस नीलमण िको लेकर अन्दर-ही-अन्दर दोनों एक-दूसरे को रात हो या दनि आघात पहुंचाने लगे।

यह नीरव द्वन्द्व या गोपन घात-प्रतघिात खुले ववािद की अपेक्षा कहीं अधकि दु:सह होता है।

3

नीलमण िके सम्पूर्ण शरीर में सरि ही सबसे मुख्य था। ऐसा लगता, मानो ईश्वर ने एक पतली-सी सींक के सरि पर एक बड़ा-सा बुदबुदा पैदा कर दयिा है। डॉक्टर भी अकसर यह आशंका प्रकट करते क िलड़का भी कसिी बुलबुले के समान क्षण-भंगुर न हो। बहुत दनिों तक उसने बोलना और चलना भी नहीं सीखा। उसके उदास और गंभीर चेहरे को देखकर लगता मानो उसके माता-पति‍ा अपने बुढ़ापे की सारी चनि्ताओं का भार इस छोटे शशि‍ु के सरि पर लाद गये हैं।

दीदी की मेहनत और सेवा से नीलमण िने अपने वपिदकाल को पार कर लयिा और छठे वर्ष में कदम रखा।

कार्तकि माह में भैयादूज के दनि नया कुर्ता, चादर और लालकनिारे की धोती पहनाकर, शशी बाबू बने नीलमण िका तलिक करने जा ही रही थी क िपूर्वोक्त पड़ोसनि तारा ने आकर बातों ही बातों में शशी के साथ झगड़ा छेड़ दयिा।

उसने कहा, ‘पीठ-पीछे भाई का सर्वनाश कर भाई के माथे पर तलिक लगाने का कोई

फायदा नहीं।'

शशी यह सुनकर विस्मय, क्रोध और वेदना से दुखी हो उठी। अन्त में जाकर पता चला कि तारा ने आरोप लगाया है कि दोनों पति-पत्नी परामर्श कर, लगान की अदायगी न होने के कारण नाबालिग नीलमणि के हिस्से की सम्पत्ति नीलाम कराकर उसके पति के फुफेरे भाई के नाम बेनामी कर खरीद रहे हैं।

यह सुनकर शशी ने अभिशाप दिया कि जो लोग इस सफ़ेद झूठ का प्रचार कर रहे हैं उनका मुंह कोढ़ से गल जाये।

यह कहकर वह रोती हुई पति के पास जा पहुंची और इस अफ़वाह की बात सुनायी।

जयगोपाल बोले, 'आजकल किसी पर भरोसा करने का ज़माना नहीं। उपेन तो मेरा सगा फुफेरा भाई है, उस पर ज़मीन-जायदाद का भार सौंपकर मैं पूरी तरह निश्चिन्त था, उसने कब हासलिपुर का महल अपने नाम खरीद लिया, मैं जान भी नहीं पाया।'

शशी ने आश्चर्य से पूछा, 'उस पर मुक़दमा नहीं चलाओगे?'

जयगोपाल ने कहा, 'भाई के ऊपर मुक़दमा करूं?और ऐसे मुक़दमे से कोई फायदा भी नहीं होता सिर्फ पैसों की बर्बादी होती है।'

पति की बात पर भरोसा करना शशी का स्त्री धर्म था पर जब वह किसी भी तरह कर न सकी तब यह सुखी परिवार, यह प्रेम की गृहस्थी सहसा उसे अत्यन्त विकराल रूप धारण करती दिखायी दी। जिस गृहस्थी को वह अपना मुख्य उद्देश्य मानती रही अकस्मात् वह एक फन्दा जान पड़ा जिसमें उन दोनों भाई-बहन को चारों ओर से फांस लिया गया है। अकेली स्त्री असहाय नीलमणि की कैसे रक्षा करे, काफी सोच-विचार कर भी वह कोई उपाय नहीं सोच पायी। वह जितनी ही चिन्ता करती उसका हृदय उतना ही पति के प्रति भय और घृणा से तथा अपने भाई के प्रति अपरिमित स्नेह से भर उठता। उसे लगा कि अगर वह कोई उपाय जानती तो सीधे लाटसाहब के पास जाकर निवेदन करती, यहां तक कि महारानी को पत्र लिखकर अपने भाई की सम्पत्ति की रक्षा कर लेती। महारानी कभी भी नीलमणि के हासलिपुर महल को बेचने नहीं देतीं जिससे वार्षिक सात सौ अट्ठावन रुपये मुनाफ़े के आते थे।

शशी जब इस प्रकार महारानी के पास अर्ज़ी भेजकर अपने फुफ़ेरे देवर को पूरी तरह मज़ा चखाने का उपाय सोच ही रही थी तभी नीलमणि को अचानक ज्वर ने आ घेरा। उसे ऐंठन के साथ-साथ मिर्गी के दौरे पड़ने लगे।

जयगोपाल ने गांव के कसिी गंवार डॉक्टर को बुलाया। शशी के अच्छे डॉक्टर के लिए अनुरोध करने पर जयगोपाल बोला, 'क्यों मतलिाल बुरा डॉक्टर है?'

जब शशी ने उसके पैरों पर गरि सरि की क़सम दी तब जयगोपाल ने कहा, 'अच्छा, शहर से डॉक्टर बुलवा रहा हूँ।'

शशी नीलमणि को गोद में ले सीने से लगाये पड़ी रही। नीलमणि भी एक क्षण के लिए उसे आंख से ओझल नहीं होने देता था; कहीं बहाने से वह चली न जाये, इस भय से उससे चपिटा रहता, यहां तक कि सोने पर भी आंचल नहीं छोड़ता।

सारा दनि इसी प्रकार बीत गया। शाम ढल जाने के बाद जयगोपाल ने आकर कहा, 'शहर में डॉक्टर बाबू नहीं मलि, वे कहीं दूर रोगी देखने गये हैं।' यह भी कहा, 'एक मुक़दमे के सलिसलि में मुझे आज ही कहीं बाहर जाना पड़ रहा है, मैं मतलिाल से कहता जा रहा हूँ कि वह रोगी को बराबर देखने आ जायेगा।'

नीलमणि रात-भर नींद में बड़बड़ाता रहा। प्रात:काल शशी बनिा आगा-पीछा वचिारे बीमार भाई को लेकर नाव पर चढ़ी और शहर के उसी डॉक्टर के घर जा पहुंची जसिके बारे में जयगोपाल ने कहा था कि वह डॉक्टर शहर से बाहर गये हैं। डॉक्टर घर पर ही थे। उन्होंने भद्र महलिा देख जल्दी से करिाये का मकान ठीक कराके एक बूढ़ी वधिवा की देख-रेख में शशी के रहने का इंतज़ाम कयिा और बालक का इलाज शुरू कर दयिा।

दूसरे दनि ही जयगोपाल भी वहां आ पहुंचे। क्रोध में आगबबूला होकर उन्होंने पत्नी को उसी क्षण साथ लौट चलने को कहा।

पत्नी बोली, 'तुम अगर मुझे मार भी डालो तो भी मैं अभी नहीं लौटूंगी। तुम लोग मेरे नीलमणि को मार डालना चाहते हो; उसकी मां नहीं, बाप नहीं, मुझे छोड़ उसका कोई भी नहीं है, मैं उसकी रक्षा करूंगी।'

जयगोपाल क्रोध से बोले, 'तब फरि यहीं रहो। मेरे घर अब कभी न लौटना।'

शशी उत्तेजति होकर बोली, 'वह घर क्या तुम्हारा है, घर तो मेरे भाई का है।'

जयगोपाल बोला, 'अच्छा, देखा जायेगा।'

कुछ दनिों तक इस घटना को लेकर मुहल्ले के लोगों ने बड़ा शोर मचाया। पड़ोसनि तारा बोली, 'पति के साथ झगड़ा करना है तो घर बैठकर क्यों नहीं करती? घर छोड़कर जाने की क्या ज़रूरत थी? आखरि पति है।'

शशी के पास जो रुपये थे वह सब खर्च कर, गहने आदि बेच शशी ने अपने भाई की मौत से रक्षा की। वहीं उसे ख़बर मिली कि द्वारीग्राम में उनकी जो बड़ी जोतवाली ज़मीन थी, साथ ही उस पर जो घर बना था और जिसकी आय किसी भी तरह सालाना डेढ़ हज़ार रुपये से कम न होगी, उस ज़मीन को ज़मींदार के साथ मिलकर जयगोपाल ने अपने नाम से ख़ारिज करवा दिया है। अब सारी सम्पत्ति जयगोपाल की है, उसके भाई की नहीं।

ठीक हो जाने के बाद नीलमणि करुण स्वर में कहने लगा, 'दीदी, घर चलो।' उसे अपने साथी भानजे की याद आ रही थी इसी से बार-बार कहने लगा, 'दीदी, अपने घर चलो न।' यह सुनकर उसकी दीदी कुछ बोली नहीं, बस रोने लगी — 'अब वह हम लोगों का घर कहां!'

लेकिन रोने से कोई लाभ नहीं था। उस समय सारी दुनिया में उसे छोड़कर भाई का दूसरा कोई नहीं था। यह सोच आंखों के आंसू पोंछकर शशी ने डिप्टी-मजिस्ट्रेट तारिणी बाबू के अन्त:पुर में जाकर उनकी पत्नी के सामने अपना दुखड़ा रोया।

डिप्टी बाबू जयगोपाल को पहचानते थे। भले घर की महिला ज़मीन-जायदाद के लिए पति के साथ झगड़े में प्रवृत्त होना चाहती है, इस बात से शशी के प्रति वे बुरी तरह खीज पड़े। उन्होंने उसी समय जयगोपाल को पत्र लिखा। जयगोपाल दौड़ा आया; साले के साथ अपनी पत्नी को ज़बरदस्ती नाव पर चढ़ाकर घर ले आया।

पति-पत्नी में दूसरी बार सम्बन्ध-विच्छेद के बाद फिर से यह पुनर्मिलन हुआ। प्रजापति ब्रह्मा की इच्छा।

बहुत दिनों बाद घर लौटकर पुराने साथियों के साथ नीलमणि बड़े आनन्द से खेलने लगा। उसके उस आनन्द को देख भीतर ही भीतर शशी का हृदय दुखता रहता।

4

सर्दियों के दिन थे। मजिस्ट्रेट साहब ने शहर का दौरा करते हुए एक दिन शिकार की खोज में गांव के बीच तम्बू डलवाया। गांव के रास्ते पर ही नीलमणि और उसके साथियों की मुलाक़ात साहब से हुई। दूसरे बालक साहब को मिलकर काफ़ी दूर निकल गये लेकिन गंभीर प्रकृति नीलमणि कौतूहल और प्रशान्त भाव से साहब को आंखें फाड़-फाड़कर देखता रहा।

साहब ने बड़े प्यार से उसके पास आकर पूछा, 'तुम पाठशाला में पढ़ते हो?'

बालक ने चुपचाप सिर हिलाकर बताया, 'हां।'

साहब ने फरि पूछा, 'तुम कौन-सी कतिाब पढ़ते हो?'

नीलमणि कतिाब का अर्थ न समझ चुपचाप मजस्ट्रिेट की ओर ताकता रहा।

घर जाकर नीलमणि ने मजस्ट्रिेट साहब के साथ अपने परचिय का पूरा हवाला बड़े उत्साह के साथ दीदी को सुनाया।

दोपहर में अचकन, पैंट और पगड़ी पहन जयगोपाल मजस्ट्रिेट को सलाम करने गया। हर तरफ़ अर्थी-प्रत्यर्थी, चपरासी और सपिाहियों की भीड़ ही भीड़! साहब गर्मी के भय से तम्बू के बाहर खुली छाया में कैम्प मेज़ लगवाकर बैठे थे और जयगोपाल को चौकी पर बैठाकर उससे स्थानीय हालचाल पूछ रहे थे। जयगोपाल गांव वालों के सामने इस गौरव आसन पर बैठे मन-ही-मन फूल रहे थे और सोच रहे थे, 'इस समय चक्रवर्ती और नन्दी में से कोई भी आकर देख जाता तो अच्छा होता।'

इतने में नीलमणि को साथ लेकर घूंघट से मुंह ढके शशी मजस्ट्रिेट के बलिकुल सामने आ खड़ी हुई और कहा, 'साहब, मैं अपने इस अनाथ भाई को आपको सौंप रही हूं, अब आप ही इसकी रक्षा करें।'

साहब अपने उस पूर्व परचिति वृहत् मस्तक तथा गंभीर प्रकृति बालक को देख और स्त्री को भद्रमहलिा समझकर उसी क्षण उठ खड़े हुए और बोले, 'आप अन्दर तम्बू में आइये।'

महलिा बोली, 'मुझे जो कहना है मैं यहीं कहूंगी।' जयगोपाल का चेहरा धूमलि पड़ गया। वह बेचैनी महसूस करने लगा। गांव के कौतूहली लोगों ने परम वनिोद का अनुभव कयिा और चारों ओर से अधकि नकिट आने की चेष्टा करने लगे पर साहब के बेंत उठाते ही सब भाग खड़े हुए।

शशी ने अपने भाई का हाथ पकड़े-पकड़े उस पति-मातृहीन बालक का सारा इतहिास आद्योपान्त बता दयिा। जयगोपाल ने बीच-बीच में उसे टोकने की कोशशि की। सारी बात सुन मजस्ट्रिेट का चेहरा सुर्ख होता चला गया और वे उठ कर बोले, 'चुप रहो' तथा बेंत के अगले सरि से उसे चौकी पर से उठ जाने और सामने खड़े होने का नर्दिेश दयिा।

जयगोपाल मन-ही-मन शशी के प्रति भुनभुनाता हुआ चुप खड़ा रहा। नीलमणि दीदी से चपिका यह सब चुपचाप सुनता रहा।

शशी की बात समाप्त होने पर मजस्ट्रिेट ने जयगोपाल से कुछ प्रश्न कयिे और उसका उत्तर सुन बहुत देर तक चुप रहे। फरि शशी को सम्बोधति करते हुए बोले, 'बेटी, यह

मुकदमा हालांकि मेरे पास नहीं आयेगा फरि भी तुम नशि्चनि्त रहो — इस सम्बन्ध में जो उचति होगा मैं करूंगा। तुम अपने भाई को लेकर नरि्भय घर लौट सकती हो।'

शशी बोली, 'साहब, जतिने दनिों तक इसे अपना घर वापस नहीं मलिता उतने दनिों तक अपने भाई को मैं अपने घर रखने का साहस नहीं जुटा पाऊंगी। इस समय यदि आप नीलमणि को अपने पास न रखेंगे तो इसकी रक्षा कोई नहीं कर सकेगा।'

साहब ने पूछा, 'तुम कहां जाओगी?'

शशी बोली, 'मैं अपनी पति के साथ घर लौट जाऊंगी। मुझे अपनी कोई चनि्ता नहीं।'

साहब थोड़ा हंसे और गले में तावीज़ पहने श्यामवर्ण, गंभीर तथा मृदु स्वभाव बंगाली लड़के नीलमणि को साथ ले जाने को कसिी तरह राज़ी हुए।

लेकनि शशी के वदिा लेते समय बालक ने उसके आंचल को कसकर पकड़ लयिा। साहब बोले, 'बेटे, तुम्हें डरने की ज़रूरत नहीं — आओ।'

घूंघट में से अवरिल आंसू बहाते-बहाते शशी बोली, 'राजा भैया, जा भैया, दीदी के साथ तेरी फरि मुलाक़ात होगी।'

यह कहते हुए उसे चपिटाकर, उसके सरि और पीठ पर हाथ फेरते, प्यार करते हुए कसिी प्रकार अपना आंचल छुड़ा वह जल्दी से वहां से चली गयी; साहब ने तुरन्त नीलमणि को बाएं हाथ से कसकर पकड़ा, वह 'दीदी रे दीदी' कहकर ज़ोर-ज़ोर से रोने-चलि्लाने लगा। शशी ने एक बार मुड़कर देखा और फरि दूर से फैलाये दाहनि हाथ द्वारा उसके प्रति सान्त्वना भेजकर रोती हुई चली गयी।

बहुत दनिों के बाद फरि उसी चरि-परचिति पुराने घर में पति-पत्नी का मलिना हुआ। प्रजापति की इच्छा!

लेकनि यह मलिन अधकि दनिों तक टकि नहीं पाया क्योंकि इसके थोड़े समय के बाद ही, एक दनि सुबह-ही-सुबह ग्रामवासयिों को ख़बर मलिी कि पछिली रात शशी हैजे से बीमार हो मर गयी और रात ही में उसे फूंक दयिा गया।

गांव के कसिी भी व्यक्ति ने इस बारे में कुछ भी नहीं कहा। सरि्फ पड़ोसनि तारा रह-रह कर गरज उठती पर और सब 'चुप-चुप' कह उसका मुंह बन्द कर देते।

भाई से वदिा लेते समय शशी ने भाई को वचन दयिा था कि फरि मुलाक़ात होगी। वह वचन पूरा हुआ या नहीं, मालूम नहीं।

बंगला-रचना : चैत्र 1301
(मार्च 1895)